IJAER/Nov-Dec 2015/Volume-4/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

डॉ. रामविलास शर्मा और लोकजागरण

डॉ. देवेन्द्र सिंह, व्याख्याता – हिन्दी
महारानी श्रीजया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज0)

हम साहित्य के माध्यम से युगीन चिंताओं और श्रेष्ठ प्रतिभाओं के चिंतन से परिचित होते हैं। अपने साहित्येतिहास का परिचय हमें आज की विकट परिस्थितियों का सामना करने का अनुभव और साहस देता है। हमें आत्महीनता से मुक्ति और राष्ट्रीय नव निर्माण के लिए डॉ॰ शर्मा की दृष्टि में हिन्दी लोकजागरण काल का विषेष महत्व रहा है। वे विष्वासपूर्वक लिखते हैं कि, "विघटनकालीन भारत का नवनिर्माण साहित्य और संगीत की उस एकताबद्ध संस्कृति के आधार पर ही संभव है जिसके निर्माता हमारे भक्त कवि थे वे जितने दक्ष काव्य–रचना में थे उतने ही गायन में, उनके षिष्यों में हिन्दू–मुसलमान दोनों हैं। जो हमारी जातीय भावनाओं के उन्नायक हैं और राष्ट्रीय साहित्य के निर्माता भी। उनका यह महत्व हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन से उजागर होता है।"[1] यहां लोकजागरण के सम्बन्ध में उनके विचार, विवेचन और निष्कर्षों का अध्ययन अपेक्षित है।

(अ) लोकजागरण का परिचय

साहित्येतिहास का युग विभाजन और उसका नामकरण एक उलझन पूर्ण कार्य है। इसकी उलझनों को देखते हुए अधिकांष विद्वान न चाहते हुए भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल विभाजन और नामकरण को मानने में भलाई समझते हैं क्योंकि उनकी व्यवस्था को छेड़ने पर जितनों प्रष्नों का समाधान नहीं हो पाता उससे कहीं अधिक नये प्रष्न खड़े जो जाते हैं। इस प्रष्न पर विचार करने से पूर्व यह आवष्यक है कि हम आचार्य शुक्ल के काल विभाजन को देखें। तथा यह भी कि डॉ॰ शर्मा उनसे कितना सहमत हैं और कितना असहमत।

1. काल–नामकरण : आचार्य शुक्ल एवं डॉ. शर्मा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ 11वीं सदी के मध्य से माना है। वे 11वीं सदी के मध्य से 14वीं सदी के उत्तरार्ध तक आदिकाल, 14वीं के उत्तरार्ध से 18वीं सदी के मध्य तक मध्यकाल (पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल) तथा 18वीं सदी के मध्य से आगे आधुनिक काल मानते हैं। उन्होंने आदिकाल को **'वीर गाथाकाल'**, पूर्व मध्यकाल को **'भक्तिकाल'**, उत्तर मध्यकाल को **'रीतिकाल'** तथा आधुनिक काल को **'गद्यकाल'** नाम दिया है। डॉ॰ रामविलास शर्मा इस कालविभाजन

और नामकरण को अब तक का सबसे व्यवस्थित कालविभाजन व सर्वाधिक उचित नामकरण मानते हैं। इसके बाद भी वे अनेक जगह उन्हें आपत्ति है। उनकी **पहली आपत्ति** है कि जब आदिकाल और मध्यकाल दोनों युग सामंती युग हैं तो फिर इन्हें दो युग न मानकर एक ही युग क्यों न माना जायें? उनकी **दूसरी और महत्वपूर्ण आपत्ति** है कि शुक्ल जी का मध्यकाल आधुनिक जातियों का निर्माण काल, आधुनिक भाषाओं का उद्‌भव काल तथा आधुनिक भाषाओं के साहित्य का विकास काल है तो फिर उसे मध्यकाल की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि यूरोप में आधुनिक जाति, भाषा और साहित्य के निर्माण एवं लगभग समान परिस्थितियों के युग पुनर्जागरण माना गया है वैसी परिस्थितियों में हमारे यहाँ मध्यकाल कैसे हो सकता है?

उनकी तीसरी आपत्ति है कि 'वीरगाथा काल' में लोकजागरण के कवि विद्यापति और खुसरो बाहर हैं, भक्तिकाल में रीतिवादी केषवदास हैं और रीक्ति–भक्ति–मुक्त सेनापति और रहीम हैं, रीतिकाल में गुरु गोविन्द सिंह जैसे भक्त और घनानंद जैसे रीतिमुक्त कवि शामिल नहीं हो पाते हैं। अतः यह विभाजन तर्क संगत नहीं है। वस्तुतः वे युगबद्ध प्रवृत्तियों की बजाय विभिन्न प्रवृत्तियों की समान्तर उपस्थिति को वास्तविक स्थिति मानते हैं इसलिए उनकी मान्यता है कि इस युग के साहित्य की अभ्युदयषील प्रवृत्ति लोकोन्मुखता है। इसके साथ पतनषील लोकविरोधी धारा का अस्तित्व भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में अभ्युदयषील प्रवृत्ति के आधार पर इसे लोकजागरण काल कहना ज्यादा संगत है। लोकजागरण में रीतिवादी धारा को छोड़कर अन्य समस्त साहित्य को शामिल किया जा सकता है।

2. सामंतवाद और लोकजागरण से अभिप्राय

डॉ॰ रामविलास शर्मा का मूलभूत सिद्धान्त है कि साहित्य के इतिहास का कालविभाजन **सामाजिक विकास की मंजिलों** के अनुरूप होना चाहिए तथा नामकरण साहित्य की **अभ्युदयषील प्रवृत्तियों** के आधार पर। उनके अनुसार भारत में 11–12वीं सदी का समय व्यापारिक पूँजीवाद तथा आधुनिक जाति, भाषा साहित्य के प्रारम्भ का समय है। इस आधार पर हिन्दी साहित्य का लगभग समस्त साहित्य आधुनिक काल के अन्तर्गत माना जायेगा। वे आधुनिक काल को पुनः 11वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक **लोकजागरण काल**, 18वीं सदी के मध्य से 19वीं सदी **नवजागरण काल** तथा 19वीं सदी के मध्य से **प्रगतिकाल** जैसे खंडों में विभाजित करते हैं। अध्याय तीन में इस पर विस्तार से विचार किया जा चुका है।

इस शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय में वीरगाथा साहित्य, भक्ति साहित्य, नीति साहित्य तथा रीतिसाहित्य के युग पर विचार किया गया है जिसे **'सामंतवाद और लोकजागरण'** नाम दिया गया है क्योंकि डॉ॰ रामविलास शर्मा के मतानुसार उस युग में सामंती प्रवृत्तियाँ एक साथ समाप्त नहीं हो गई थी जबकि लोक जागरण का साहित्य प्रारम्भ होकर अपना विकास कर रहा था। उस वक्त जैसे सामाजिक स्तर पर सामंतवाद की कोख में व्यापारिक पूँजीवाद पनप रहा है ठीक उसी तरह मध्यकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के मध्य आधुनिकता पनप रही थी। आगे भी न तो समाज में सामंतवाद पूरी तरह समाप्त हुआ और न साहित्य में मध्यकालीन प्रवृत्तियों का अवसान हुआ। वास्तविकता यह है कि हिन्दी साहित्य की आरम्भिक अवस्था में सामंती प्रवृत्तियों का प्राबल्य है लेकिन धीरे–धीरे लोक जागरण की प्रवृत्तियाँ सामंती प्रवृत्तियों को अपदस्थ कर साहित्य की मुख्यधारा में अपना स्थान प्राप्त करती हैं। डॉ॰ रामविलास शर्मा सामंतवाद को मध्यकाल का लक्षण मानते हैं तथा व्यापारिक पूँजीवाद को आधुनिक काल का। साहित्य की लोकोन्मुखता के कारण वे आधुनिक काल के प्रथम चरण को लोकजागरण कहते हैं तथा उस युग का मुख्य अन्तर्विरोध सामंतवाद और लोकजागरण के मध्य मानते हैं।

"समाज में वर्णभेद, भूस्वामियों की प्रधानता, पुरोहिती कर्मकांडों का बोलाबाला, शोषण, जाति व्यवस्था का विकास, विभिन्न जनपदों का आपसी अलगाव तथा सीमित आर्थिक सम्बन्ध **सामंतवाद के प्रमुख लक्षण हैं**।"[2] "सामंती साहित्य में सामंती भाषाओं का प्रभुत्व, वीर व श्रृंगार रूढ़ियों का बोलबाला रहता है।"[3] ये सभी मध्यकालीनता के लक्षण माने जाते हैं।

इसके विपरीत जब जनपदों का आपसी अलगाव खत्म होता है, वित्त का चलन होता है, वर्ण व्यवस्था का विघटन होता है, व्यापारी वर्ग का जन्म होता है, आम जनता को महत्व प्राप्त होता है, पुरोहित और सामंतों के विषेषाधिकार समाप्त होने लगते हैं तथा आधुनिक जाति, भाषा व साहित्य का विकास होता उस अवस्था को **व्यापारिक पूँजीवाद कहते हैं**। इस अवस्था में साहित्य में भी अतिषयोक्तिपूर्ण, चमत्कार पूर्ण वर्णन और साहित्यिक रूढ़ियों से साहित्य को मुक्ति मिलती है। साहित्य दरबारी कैद से मुक्त होकर आम जनता के सुख–दुःख का सहभागी बनता है तथा समाज में में विषमता तथा शोषण का विरोध करता है। तब वह आधुनिक अथवा लोकजागरण का साहित्य कहलाता है।[4] **लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा तथा लोकोन्मुखता लोकजागरण के साहित्य की प्रमुख पहचान है।**

डॉ॰ रामविलास शर्मा जातीय निर्माण व जातीय भाषाओं के विकास को आधुनिकता की पहचान मानते हैं। वे लिखते हैं कि, "जाति का निर्माण सामंती व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारिक पूँजीवाद के विकास

के साथ होता है, अतः यह विकास विषमगति से होता है और उसकी प्रक्रिया दीर्घकालीन होती है। कभी सामंती सम्बन्ध प्रबल हो जाते हैं तो यह प्रक्रिया अवरूद्ध हो जाती है।"[5] ठीक यही स्थिति साहित्य की है। सामाजिक परिस्थितियों के कारण साहित्य में लोकजागरण की प्रवृत्तियों का विकास होता है लेकिन जब–जब समाज में सामंती सम्बन्ध मजबूत होते हैं तब–तब साहित्य में भी सामंती प्रवृत्तियाँ पुनर्जीवित होती रहती हैं। वास्तविकता तो यह है कि साहित्य में भी समाज की तरह सामंती और लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ विषमगति से समान्तर रूप में उपस्थित रहती हैं। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वीरगाथा काव्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से सामंती अर्थात मध्यकालीन साहित्य है जबकि इसी के समान्तर विद्यापति और अमीर खुसरो दरबारी कवि होने के बावजूद लोकजागरण की प्रवृत्तियों का श्रीगणेष करते हैं। आगे भक्तिकाल में लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ प्रबल रहती हैं लेकिन रीतिकाल में पुनः रीतिवादी प्रवृत्तियाँ प्रमुखता प्राप्त करती हैं।

विभिन्न समान्तर प्रवृत्तियों की उपस्थिति में एक महत्वपूर्ण समस्या यह आती है कि उस युग का नामकरण किस प्रवृत्ति के आधार पर किया जाये? डॉ॰ रामविलास शर्मा का मानना है कि ऐसी स्थिति में नामकरण अभ्युदयषील साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर होना चाहिए। इसलिए वे आधुनिक काल के प्रथम चरण को **'लोकजागरण'** काल कहते हैं। केवल **'लोकजागरण'** नामकरण से समस्या यह खड़ी होती है कि **'वीरगाथा'** काव्य इससे बाहर रह जाता है क्योंकि स्वयं डॉ॰ शर्मा उसे सामन्ती साहित्य मानते हैं। डॉ॰ शर्मा समाज और साहित्य में द्वन्द्वात्मक स्थिति को विषेष महत्व देते हैं। उनका मानना है कि 'समाज हो या साहित्य उसमें एक समय में एक ही मुख्य अन्तर्विरोध होता है अन्य सब गौण। इसलिए हमारा ध्यान मुख्य अन्तर्विरोध पर ही केन्द्रित होना चाहिए।' निर्विवाद रूप से इस युग का मुख्य अन्तर्विरोध सामंतवाद और लोकजागरण के मध्य है। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी के **'आदिकाल', 'भक्तिकाल'** और **'रीतिकाल'** में सामंती और लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ समान्तर रूप से प्रवाहित रहती हैं। अन्ततः लोकजागरण की धारा सामंती धारा को अपदस्थ कर अपना स्थान प्राप्त करती है। मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक विकास के सिद्धान्त के आधार पर इस युग का नामकरण **'सामंतवाद और लोकजागरण'** उचित ही है। दरअसल वे साहित्य में सदैव ही प्रगतिषील और पतनषील अथवा स्वस्थ और अस्वस्थ साहित्य की उपस्थिति मानते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए लिखते है कि, "समस्याओं का सम्बन्ध हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर उसके आधुनिक काल तक से है। इस दीर्घ काल खंड में साहित्य की दो परस्पर विरोधी धाराएँ एक–दूसरे से टकराती दिखाई देती हैं। मोटे तौर पर एक है दरबारों से जुड़े हुए साहित्य की धारा, इसे हम **'रीतिवादी धारा'** कह सकते हैं, दूसरी है दरबारों से बाहर सामान्य जनजीवन से जुड़े

हुए साहित्य की धारा, इसे हम **लोकजागरण की धारा** कह सकते हैं।"[6] वे लोकजागरण की धारा को महत्वपूर्ण मानते हैं इसलिए नामकरण भी इसी नाम से करने के पक्षधर हैं। स्पष्ट है कि शेष काव्यधारा जैसे वीरगाथा काव्य व रीतिकाव्य की धारा लोकजागरण की धारा के समान्तर उपस्थित है। तथा वह इस युग की गौण धारा है।

इस विवरण के बाद यह कहना भी गलत नहीं होगा कि डॉ॰ रामविलास शर्मा के काल विभाजन और नामकरण में यहाँ विरोधाभास स्पष्ट देखा जा सकता है। एक ओर वे **'आदिकाल'** को **'सामंती युग'** मानते हैं अर्थात उसे **'मध्ययुग'** कहते हैं वहीं दूसरी ओर **'वीरगाथा'** काव्य को **'रीतिकाल'** के साथ मिलाकर पढ़ने का प्रस्ताव भी रखते हैं **'हिन्दी जाति का साहित्य'** में स्पष्ट कहते हैं कि, "षुक्ल जी का आदिकाल वास्तविक मध्यकाल है, हिन्दी जनपदों के इतिहास का सामंत काल है।"[7] दूसरी ओर वे यह भी प्रस्ताव रखते हैं कि, "यदि भक्ति काल या रीतिकाल में राजाओं की प्रषंसा **उसी ढंग** से होती थी। **जिस ढंग** से वीरगाथा काल में, तो इन तीनों कालों में प्राप्त होने वाले इस ढंग अथवा रीति का अध्ययन एक साथ करना उचित होगा।" यही नहीं वे श्रृंगार काव्य के बारे में भी यही कहते हैं कि, "इसी तरह श्रृंगार रस की कविता वीरगाथा काव्य से लेकर केषव, मतिराम, बिहारी तक अपने खास ढंग से रची जाती रही।. . . ये विषेषताएँ वीर और श्रृंगार दोनों रसों के काव्यों में है, इसलिए दोनों को रीतिवादी काव्य कहते हैं।"[8] यहाँ विरोधाभास यह है कि वे वीरगाथा, भक्ति साहित्य व रीति साहित्य का अध्ययन एक साथ भी करना चाहते और वीरगाथा युग को मध्यकाल तथा शेष कालों को आधुनिक भी बाँटना चाहते हैं। **यही कारण है कि हमने इस शोध प्रबन्ध में इस युग को 'सामंतवाद और लोकजागरण' नाम दिया है।**

3. सामंतवाद और लोकजागरण का विकास

डॉ॰ रामविलास शर्मा के लोकजागरण काल में आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल को शामिल करते हैं। वे शुक्ल जी के **'आदिकाल'** को **'मध्यकाल'** मानते हैं क्योंकि वह समय हिन्दी जनपदों का सामंतकाल है, जनपदों में अभी अलगाव बना हुआ है, देषी भाषाओं के समान्तर अपभ्रंष का बोलबाला है, भाषा और काव्य पर अपभ्रंष की रूढ़ियों का गहरा प्रभाव है, चारण काव्य परम्परा इस युग की प्रमुख काव्य परम्परा है।[9] इसे वे चमत्कार प्रदर्षन की प्रवृत्ति और काव्य रूढ़ियों के कारण **'रीतिवाद का प्रथम उत्थान'** भी कहते हैं। लेकिन इसके साथ–साथ वे विद्यापति और खुसरों से लोकजागरण वाले काव्य की शुरुआत भी इसी दरबारी काव्य परम्परा के बीच से मानते हैं।

इसके बाद शुक्ल जी का **'मध्यकाल'** है जिसे डॉ॰ शर्मा समान आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों के कारण यूरोपीय पुनर्जागरण के समकक्ष मानते हैं तथा उसे **'लोकजागरण काल'** कहते हैं क्योंकि "आर्थिक सम्बन्धों के विकास से जनपद परस्पर सम्बन्ध होते हैं, ब्रज और अवधी जैसी जनपदीय भाषा व साहित्य का प्रसार अन्य जनपदों में होता है, अपभ्रंष की रूढ़ियों से भाषा और काव्य को मुक्ति मिलती है लेकिन नये आर्थिक सम्बन्धों का यथेष्ट प्रसार हो चुका है।"[10] अर्थात सामंतवाद की कोख में व्यापारिक पूँजीवाद का प्रादुर्भाव हो चुका है। वस्तुतः "व्यापारिक पूँजीवाद सामंती ढाँचे के भीतर पनपता है पर उसे तोड़ नहीं पाता, इस मूल सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप साहित्य में रीतिवादी धारा और रीतिविरोधी धारा, सामंती रूढ़ियों की धारा और लोकजागरण की धारा समान्तर प्रवाहित रहती है। . . . भक्तिवाद और रीतिवादी काव्य के समान्तर यह वीरगाथा काव्य की धारा भी बनी हुई है। वास्तव में वह भक्तिकाव्य से भिन्न है, रीतिवाद काव्य से सम्बन्ध है।. . . वीरगाथा काव्य में प्रमुख है, श्रृंगार रस गौण है, रीतिवादी काव्य में श्रृंगार रस प्रमुख है, वीर रस गौण है। इतना ही अन्तर है।"[11] अर्थात काव्य रूढ़ियों की दृष्टि से दोनों धाराएँ समान है। दोनों का सम्बन्ध राजदरबार से है। इस तरह वे वीर और श्रृंगार रस की धारा को रीतिवादी व जनजीवन से जुड़ी भक्ति और नीति की कविता के अतिरिक्त रीतिमुक्त वीर व श्रृंगार की रचनाओं को लोकजागरण की धारा कहते हैं।

लोकजागरण की धारा को वे प्रमुख धारा मानते हैं तथा उसके विकास को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, "षुक्ल जी का आदिकाल सामंत काल के अन्तर्गत है। किन्तु इसी काल में विद्यापति और खुसरो हुए। लोकजागरण वाले साहित्य की शुरूआत इन दो कवियों से माननी चाहिए। भक्ति काव्य इस साहित्य का अंग है, बहुत महत्वपूर्ण अंग है, फिर भी सामंती रूढ़ियों से मुक्त सारा साहित्य उसमें सिमट नहीं आता। लोकजागरण वाले साहित्य की धारा विद्यापति और खुसरो से आरम्भ होकर सूर, तुलसी के अलावा सेनापति और रहीम को समेटती हुई रीतिमुक्त घनआनन्द तक प्रवाहित रहती है। भारतेन्दु हरिष्चन्द्र से जो नवजागरण शुरू होता है, वह नयी परिस्थितियों में, पुराने लोकजागरण का विकास है।"[12] वे इस काव्य धारा में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त गिरधर, बैताल, भूषण लाल तथा पदमाकर को भी सम्मलित करते हैं।

जिस तरह इग्लैंड में गणतंत्र के ध्वस्त होने पर सामंतवाद सुदृढ़ हुआ और पुनर्जागरण के बाद वहाँ निओक्लासिक अथाव रीतिवादी युग आया ठीक उसी तरह भारत में मुगल साम्राज्य के पतन से भक्तिकाल के बाद रीतिवाद आया। डॉ॰ शर्मा "वीरगाथा काल को रीतिवाद का प्रथम उत्थान, केषवदास के समय को द्वितीय उत्थान तथा देव–बिहारी–मतिराम को तृतीय उत्थान का कवि मानते हैं।"[13]

कहने का आषय यह है कि डॉ॰ रामविलास शर्मा इस लोकजागरण काल में रीतिवादी काव्य धारा एवं लोकजागण काव्य का समान्तर विकास देखते हैं। लोक जागरण वाली काव्य धारा विद्यापति और अमीर खुसरों से शुरू होकर, भक्ति कवियों के माध्यम से अपना विकास करती हुई रीतिमुक्त में उपस्थित है। इसी तरह रीतिवादी काव्य धारा वीर और श्रृंगार रस को लेकर चारण काव्य से शुरू होती है, भक्तिकाल में शान्त रहती है तथा अनुकूल परिस्थितियों पाकर केषव, देव, बिहारी में चरम सीमा पर पहुँचती है।

(ब) चारण काव्य परम्परा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने **'आदिकाल'** में अपभ्रंष और देष भाषा काव्य परम्परा का उल्लेख किया है। देष भाषा काव्य के अन्तर्गत वे **'वीरगाथा काव्य'** को प्रमुख प्रवृत्ति मानते हुए उसे **'वीरगाथा काल'** नाम देते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस काल को वीरगाथा काल मानने पर आपत्ति करते हैं क्योंकि इससे अन्य प्रवृत्तियों की उपेक्षा हो जाती है जबकि आचार्य द्विवेदी हिन्दी की विकास परम्परा की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानते हैं। डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने इस आदिकाल को **'संधिकाव्य'** और **'चारणकाल'** में वर्गीकृत किया है। उनका चारण काल वस्तुतः वीरगाथा काल ही है। राहुल सांकृव्यायन इस काल को **'सिद्ध–सामंत'** काल नाम देते हैं। उनका सामंत काल भी उसी वीरगाथा काव्य को संबोधित है। जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि **डॉ॰ रामविलास शर्मा** आदिकाल और मध्यकाल को आधुनिक काल का प्रथम चरण मानते हैं। वे अपभ्रंष साहित्य को हिन्दी से अलग ही नहीं बल्कि उसे देषी भाषाओं का विरोधी तथा पतनषील साहित्य मानते हैं। वे हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ **'वीरगाथा काव्य'** से मानते हैं तथा इस प्रवृत्ति को आखिल भारतीय संदर्भ में चारण काव्य परम्परा कहते हैं। "अखिल भारतीय स्तर पर **'तमिल'** में चारण काव्य परम्परा कर उद्‌भव होता है। वहाँ अपने आश्रय दाताओं की प्रषंसा में काव्य रचना कर धन प्राप्त करने वाले कवि वर्ग को चारण कहा गया है। कुछ चारण दरबारों में रहकर काव्य रचना करते थे तो घुमन्तू जीवन बिताकर काव्य रचना करते थे। उत्तर भारत में यह घुमन्तू कवियों का वर्ग ही **'चारण'** कहलाता था।"[14] उनकी दृष्टि में यह चारण काव्य परम्परा **'रीतिवाद'** का प्रथम उत्थान है। इस प्रवृत्ति का उदय सामंतकालीन दरबारों में होता है। इसी कारण वे इसे दरबारी काव्य धारा भी कहते हैं। वे चारण काव्य परम्परा को मध्यकालीन साहित्य मानने के साथ इसमें लोकजागरण की अनेक प्रवृत्तियाँ भी देखते हैं। वीरगाथा काव्य को चारण काव्य या दरबारी साहित्य कहने से विद्यापति व अमीर खुसरो को भी शामिल किया जा सकता है क्योंकि ये भी मूलतः दरबारी कवि थे। चारण काव्य परम्परा पर डॉ॰ शर्मा ने विस्तार से विचार किया है।

1. लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा

डॉ॰ रामविलास शर्मा लोक भाषाओं के विकास से ही आधुनिक काल का प्रारम्भ मानते हैं। यों तो वे लोकभाषा या जनपदीय भाषाओं की उपस्थित प्राचीन काल से मानते हैं लेकिन 11–12वीं सदी में लोकभाषाएँ अपभ्रंष को अपदस्थ कर साहित्य में अपना स्थान पक्का कर लेती हैं। यह इस युग की सबसे महत्वपूर्ण विषेषता है और इन भाषाओं को साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में चारण काव्य परम्परा का विषेष योगदान है। इस युग की लोक भाषाओं के सम्बन्ध में कई बाते उल्लेखनीय हैं।

;पद्ध अखिल भारतीय प्रक्रिया

डॉ॰ रामविलास शर्मा मानते हैं कि भारत में 11–12वीं सदी में लोकभाषाएँ व्यवहार में आ चुकी थी। यह प्रक्रिया किसी एक राज्य में न होकर अखिल भारतीय स्तर पर घटित हो रही थी। हिन्दी प्रदेष में भी 12वीं सदी की रचना **'उक्ति– व्यक्ति–प्रकरण'** की भाषा पुरानी अवधि है। वे लिखते हैं कि, "महाराष्ट्र और गुजरात से लेकर बंगाल तक एक सामान्य प्रक्रिया घटित हो रही थी। नई अभ्युदयषील आधुनिक भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगा है और वह समय बारहवीं सदी और उससे पहले का है।"[15]

;पपद्ध दक्षिण भारत में अपेक्षाकृत पहले विकास

लोकभाषाओं का विकास उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में पहले हुआ है क्योंकि उत्तर भारत सांमती शासन का गढ़ था और दक्षिण की अपेक्षा काफी बाद तक रहा है। सामंती शासन के संरक्षण में यह पुरोहितवाद का भी गढ़ बना रहा। पुरोहित वर्ग लोकभाषाओं की अपेक्षा अपभ्रंष जैसी सामंती भाषाओं का संरक्षक रहा है। दक्षिण भारत में 7वीं सदी में ही लोक भाषाओं की रचनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं जबकि उत्तर भारत में यह प्रक्रिया 11–12वीं सदी में प्रारम्भ होती है। "जिस समय उत्तर भारत के पंडितजन संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंष में उलझे हुए थे उस समय दक्षिण भारत में लोकभाषाएँ साहित्य का माध्यम बन रही थी। जैसे तमिलनाडू के कंबन ने वाल्मीकि रामायण का रूपान्तर अपनी भाषा में किया, **'संगम काल'** एवं **'कम्बन'** के बाद **'विल्लीपुत्तुरर'** नाम के कवि ने महाभारत का रूपान्तर किया था।"[16]

;पपपद्ध उक्ति व्यक्ति प्रकरण और अवधी भाषा की प्रतिष्ठा

यह सत्य है कि सामंती जकड़न के कारण लोकभाषाओं का विकास दक्षिण में पहले हुआ और उत्तर भारत में बाद में हुआ। उत्तर भारत में देषी भाषाओं के विकास की दृष्टि से दामोदर पंडित की **'उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण'** नामक पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह पुस्तक इस बात को सिद्ध करने के लिए

पर्याप्त है कि 12वीं सदी में अवधी का प्रचलन था और वह अपभ्रंष से उत्पन्न नहीं हुई थी बल्कि उसके समान्तर उसका विकास हुआ था। इसके सम्बन्ध में डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "बारहवीं सदी में अवधि जानने वालों को संस्कृत सिखाने के लिए दामोदर पंडित ने **उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण** नामक ग्रंथ लिखा था। बारहवीं सदी में हेमचन्द्र अपना अपभ्रंष का व्याकरण लिख रहे थे। हेमचन्द्र और दामोदर पंडित की रचनाओं की तुलना करने से ज्ञात होगा कि साहित्य की रूढ़ भाषा अपभ्रंष थी। बोलचाल की भाषा उससे बिल्कुल अलग थी और इतना विकास हो चुका था कि उसका रूप आधुनिक भाषाओं के रूप जैसा लगे।"[17] डॉ॰ **'चाटुर्ज्या'** और **'मुनि जिन विजय'** भी 'नूतन भारतीय आर्य भाषा विकास की दृष्टि से' इसे एक बड़े प्रमाणिक ग्रंथ मानते हैं। "बारहवीं सदी में एक बड़े क्षेत्र में अवधी लोकव्यवहार की भाषा थी, यह दामोदर पंडित की पुस्तक से प्रमाणित है। चौदहवीं सदी में वह काव्य की भाषा बनी यह मुल्ला दाउद के काव्य से प्रमाणित है। इसी विकास क्रम में आगे मलिक मोहम्मद जायसी और तुलसीदास ने अपने काव्य रचे।"[18]

;पअद्ध तुर्क शासन और लोक भाषाएँ

इतिहास और साहित्येतिहास लेखन में इतिहासकार का दृष्टिकोण अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। तथ्यों का मनमाना उपयोग और निष्कर्ष इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण कुप्रथा है। यही कारण है कि अनेक इतिहासकार भारत की हर समस्या की जड़ मुस्लिम शासन में खोज लेते हैं। डॉ॰ रामविलास शर्मा अपने सम्पूर्ण लेखन में मुगल शासन को अत्यधिक उदार दृष्टिकोण से देखते हैं तथा मुगल शासन के अनके सकारात्मक तथ्य हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। उनका मानना है कि मुगल शासन के दौरान भारत की प्रादेषिक भाषाओं का खूब प्रसार हुआ था। इस परिस्थिति और उसके कारणों की व्याख्या करते हुए डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "यह अद्‌भुत बात है कि जो तुर्कों के आक्रमण का समय है, वही उत्तर भारत की भाषाओं में नये साहित्य की रचना का समय भी है। वास्तव में यह उत्तर भारत में नई जातियों के अभ्युदय का समय है। इस अभ्युदय में उनकी भाषा का गठन, उस भाषा में साहित्य की रचना, ये दोनों प्रक्रियाएँ शामिल हैं। जातियों का विकास व्यापार की प्रगति के बिना असंभव है। . . .राज्य सत्ता हाथ में होने पर भी भारत में कहीं भी तुर्की भाषा बोलने वाले न रह गए। इसका कारण यही जातीयता का विकास है।"[19] स्पष्ट है कि डॉ॰ शर्मा यह मानते हैं कि तुर्क शासन व्यापार, भाषा, साहित्य और जातीयता की दृष्टि से अंग्रेजों की तरह बाधक नहीं था।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य का यह **'आदिकाल'** या **'चारण काव्य'** देषी भाषाओं के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है तथा यह इस युग की एक महत्वपूर्ण विषेषता है। इस समय हिन्दी प्रदेष में अवधि, मैथिली तथा डिंगल आदि अनेक देषी भाषाएँ साहित्य का माध्यम बनती हैं। प्रारम्भिक अवस्था के कारण विद्वान उन्हें पुरानी हिन्दी, पुरानी गुजराती या अन्य ऐसे ही नामों से सम्बोधित करते रहे हैं। दरअसल "साहित्य में लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा एक पेचीदा प्रक्रिया थी। हिन्दी प्रदेष में अनेक जनपदीय भाषाएँ थी।. . . जनपदीय भाषाओं के साथ ही संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंष के साहित्य की रूढ़ियाँ थी। अनेक कवियों का सम्पर्क इन सभी भाषा परम्पराओं से था।"[20] फिर भी इनके माध्यम से हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिकता की स्पष्ट पहचान की जा सकती है। डॉ॰ शर्मा इन्हें इसी दृष्टि से देखते हैं।

2. अखिल भारतीय प्रसार

डॉ॰ रामविलास शर्मा का मानना है कि आधुनिक जातीय भाषाओं के साहित्य का प्रारम्भ लगभग सम्पूर्ण भारत में चारण या दरबारी काव्य से होता है। वे इसे एक अखिल भारतीय परम्परा मानते हुए लिखते हैं कि, "यह आवष्यक नहीं कि भारत के हर प्रदेष में साहित्य की शुरूआत चारण काव्य और रीतिवाद से हुई हो परन्तु भारत के 4–5 प्रदेषों में एक सी प्रवृत्ति दिखाई दे तो हम उसे अखिल भारतीय कह सकते हैं। इसे हम साहित्य के विकास का समान भारतीय मार्ग कह सकते हैं। जहाँ इससे हटकर विकास हुआ है, उसे हम अपवाद स्वरूप में ग्रहण कर सकते हैं।"[21]

;पद्ध तमिल साहित्य में

आधुनिक भारतीय भाषाओं में सबसे प्राचीन साहित्य **'तमिल का संगम'** काव्य है। इसका उल्लेख 7वीं सदी के वाद मिलता है। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि तमिलनाडू का उत्तर भारत से सम्पर्क था। हिन्दी साहित्य का **'वीरगाथा काल'** और तमिल का **'संगम साहित्य'** अपनी राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनेक प्रवृत्तियों में समान है। दोनों साहित्य सामंती उपज होने के कारण उनमें जे॰ पार्थ सारथी को उद्धृत करते हैं कि, "जिसे हिन्दी में वीरगाथा काल कहते हैं, उससे तमिलनाडू का संगम काल मिलता जुलता है। युद्ध और श्रृंगार संगमकालीन साहित्य के मुख्य विषय थे। . . .तमिल वीरगाथा काल में दरबारी चारण–काव्य बहुत अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया था। जिस चारण को दाता से धन मिल जाता था, वह दूसरे चारण को सिखाता था, उसे कैसे धन प्राप्त करना चाहिए। इस तरह की षिक्षा के लिए एक विषेष काव्य रूप का चलन ही हो गया था। . . .बहुत से चारण दरबारों में न रहते

थे, घुमन्तू जीवन बिताते थे। . . .उत्तर भारत में चारण शब्द मूलतः इन्हीं घुमन्तू कवियों कलाकारों के लिए प्रयुक्त होता था, राजदरबारों में रहने वाले कवियों के लिए नहीं।"[22] स्पष्ट है कि हिन्दी का वीरगाथा काव्य तमिल के वीरगाथा काव्य से अनेक बातों में समानता रखता है।

;पपद्ध अन्य राज्यों में

बंगाल में ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा थी लेकिन वह अभी सुलझ नहीं है लेकिन 16वीं सदी की एक पोथी के कुछ दोहों से इस परम्परा का अस्तित्व प्रमाणित होता है। इसके अलावा वहाँ ऐतिहासिक काव्यों की पूर्ति बांग्ला भाषा में कायस्थों द्वारा महाभारत के वाचन से होती थी। इस महाभारत को भी हमें चारण काव्य की परम्परा में मानना चाहिए।"[23] **कर्णाटक** में भी महाभारत के आधार पर कवि **'पम्प'** का **'विक्रमार्जुन विजय'** तथा रुन का **'साहम भीम विजय'** उपलब्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ॰ शर्मा लिखते है कि, इन ग्रंथों में "बाहरी ढाँचा बहुत कुछ महाभारत का बना रहा परन्तु अर्जुन या भीम के रूप में कवियों के आश्रयदाता प्रतिष्ठित हुए। कर्णाटक में महाभारत का चक्रव्यूह भेद कर चारण काव्य परम्परा ने उसके भीतर प्रवेष किया और वहाँ पुष्पित और पल्विल हुआ।"[24] **आंध्र प्रदेष** में महाभारत के रूपान्तरण और रीतिवाद की शुरूआत 11वीं सदी में हुई। **'नन्नय भट्ट'** व **'तिक्कना'** नामक कवियों ने महाभारत का लोकप्रिय रूपान्तर किया।

;पपपद्ध उत्तर भारत में

राजस्थान और उत्तर भारत में चारण काव्य परम्परा के रूप में **'वीरगाथा काव्य'** की समृद्ध परम्परा मौजूद है। इस परम्परा का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध काव्य चन्दबरदाई का **'पृथ्वीराज रासो'** है। अप्रमाणिकता के तमाम आरोपों के बावजूद हम इस परम्परा के अस्तित्व को नकार नहीं सकते। डॉ॰ रामविलास शर्मा तर्क करते हुए लिखते हैं कि, पृथ्वीराज रासो के जाली होने के बारे में जितनी बातें कहीं हैं, उतनी ही और वैसी ही बातें महाभारत के सम्बन्ध में कही जा सकती हैं। इसी तरह के प्रष्न कालिदास, होमर और षेक्सपियर के सम्बन्ध में भी उठते रहे हैं। इसलिए हमें रचनाकारों की प्रमाणिकता छोड़कर उनकी उपलब्ध रचनाओं और उनसे प्राप्त सत्य का विष्लेषण करना चाहिए। **जगनिक का आल्हा** भी ऐसा ही चारण काव्य है जिसने समस्त उत्तर भारत को अब तक आन्दोलित कर रखा था। गेय काव्य होने से उसका बहुत कुछ कलेवर बदल गया है। इस आधार पर कोई कहना चाहे तो कह सकता है कि पूरा **'आल्हा'** जाली है। डॉ॰ शर्मा कहते हैं कि, "मूल शब्द भले ही न हों पर उनकी गूँज जनता के मन में

बसी हुई है। यह बहुत बड़ी बात है। यहाँ चारण काव्य राजदरबार से बाहर निकलकर लोक संस्कृति का अंग बन गया है।"[25]

चारण काव्य का प्रसार अखिल भारतीय स्तर पर हो रहा था तथा उसमें अनेक सामान्य प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। "इस सम्बन्ध में शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो कुछ लिखा है, उसमें और तमिल सम्बन्धी पार्थसारथी के विवेचन में बड़ी समानता है। सामंतवाद की परिस्थितियाँ दोनों जगह मिलती–जुलती थी और उनमें जो साहित्य रचा गया, उसमें बहुत बड़ी समानता है।"[26] साहित्य में आपसी कलह, कन्याहरण, वीरता प्रदर्षन, युद्ध के कारण, सामंतों का आचरण, अतिषयोक्ति पूर्ण वर्णन, तथ्यों की असत्यता, वीर व श्रृंगार रस की प्रमुखता तथा आश्रयदाताओं की झूठी प्रषंसा आदि बातें समान पाई जाती हैं।

आचार्य शुक्ल के इतिहास पर विचार करते समय हुए डॉ॰ शर्मा वीरगाथा काव्य के अस्तित्व और विषेषताओं के सम्बन्ध में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि, "वीरगाथा काव्य हिन्दी की एक विषेष धारा है, इस धारा के प्रतिनिधि–ग्रंथ अधिकतर अप्रमाणिक हैं, लेकिन उनसे एक वीर गाथा काव्य की परम्परा का अस्तित्व सिद्ध होता है। . . .और अंत में यह कि वीरगाथा काव्यों से किसी स्वर्ण युग की कल्पना न करनी चाहिए वरन् कन्या हरण, परस्पर युद्ध और शूरता के अतिरंजित वर्णन भी ध्यान में रखने चाहिए। विदेषी आक्रमणकारियों के खिलाफ भी युद्ध हुए लेकिन इन सामंती काव्यों में देष रक्षा का भाव प्रायः नहीं है।"[27]

डॉ॰ रामविलास शर्मा का प्रस्ताव है कि हमें इनकी प्रामाणिकता के झगड़े से ऊपर उठकर उसमें से व्यंजित होने वाले सत्य को पकड़ना चाहिए। चारण काव्य केवल दरबार तक ही सीमित नहीं थे। उनकी रचना भले ही दरबारों में हुई लेकिन अपनी लोकप्रियता के चलते अनेक रचनाएँ लोक संस्कृति का अंग बन चुकी हैं। ऐसी स्थिति में इन्हें नकारना न तो सम्भव है और न ही औचित्यपूर्ण। वे इसके विकास व महत्व के सम्बन्ध में लिखते हैं कि, "वीरगाथा काल में सारी कविता वीर रस की हो, ऐसा नहीं था। उसके साथ श्रृंगार भी था। यही दो धाराएँ आगे रीतिवादी साहित्य में मिलती हैं।. . . इस तरह भक्तिकाव्य से पहले और उसके समान्तर चारण काव्य से हम रीतिवादी परम्परा का विकास होते देखते हैं। केषवदास के लिए उनसे पहले के कवियों ने जमीन तैयार कर दी थी।. . . यह चमत्कार प्रेम, भाषा से लेकर वस्तुओं के वर्णन तक अनेक रूपों में प्रकट होता है। और वह वीरगाथा काव्य को रीतिवाद से

जोड़ता है।"[28] अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्येतिहास की दृष्टि से वीरगाथा की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

3. रीतिवादी प्रवृत्तियाँ

डॉ॰ रामविलास शर्मा यदि वीरगाथा काव्य या चारण काव्य को **रीतिवाद का** प्रथम उत्थान कहते हैं तो स्पष्टतः उनका आषय है कि रीतिवादी प्रवृत्तियाँ इस साहित्य में अपनी प्रारम्भिक अवस्था में उपस्थित हैं। वे वीरगाथा काव्य और श्रृंगार काव्य को चमत्कार प्रदर्षन तथा साहित्यिक रूढ़ियों के कारण समान रूप से रीतिवादी साहित्य ही मानते हैं। अन्तर केवल रस की प्रमुखता का है। इसके अलावा संस्कृत साहित्य के रीतिसाहित्य की परम्परा भी यहाँ देखी जा सकती है जिसका विकास आगे **'रीतिकाल'** में होता है।

"मिथिला राजस्थान से बहुत दूर है परन्तु शुरुआत वहाँ भी रीतिवाद से हुई। मैथिली भाषा का सबसे प्राचीन ग्रंथ **'वर्ण रत्नाकर'** मिथिला के राजा **'हरिसिंह देव'** के दरबार के उच्चाधिकारी ज्योतिष्वर ठाकुर द्वारा लिखा गया था। वीरगाथा काव्य का प्रचलन तथा उसके लिए पर्याप्त सामग्री होने पर भी उन्होंने इसमें श्रृंगार का विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें काम सम्बन्धी मंत्र और औषधियाँ भी बताई गई हैं। नायिका भेद भी इसमें देखा जा सकता है। वीरकाव्य परम्परा के मध्य रीतिकाव्य लिखने का कारण यह है **'ज्योतिष्वर'** संस्कृत साहित्य के लेखक थे इसलिए स्वाभाविक रूप से संस्कृत के रीतिसाहित्य से परिचित भी थे। यहाँ राजदरबार की झाँकी भी स्पष्ट देखी जा सकती है। काव्य और संगीत का विवरण भी इसमें है। वस्तुतः मिथिला और बुंदेलखंड के जनपदों में ज्योतिष्वर और केषवदास एक ही रीतिवादी परम्परा के सूत्रधारा हैं।"[29] चारण काव्य परम्परा और रीतिवाद के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा लिखते हैं कि, "कथा को सजाने के लिए पहले से तैयार की हुई ऐसी वर्णानात्मक पदावली का प्रयोग भारत में काफी पुराना था। . . .रूढ़ पदावलियों के व्यवहार को यदि रीतिवाद कहा जाए तो मानना होगा कि इसका चलन उत्तर भारत में एक हजार वर्ष से अधिक समय तक रहा है। इस रीतिवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध चारण काव्य परम्परा से है।"[30]

4. लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ

चारण काव्य परम्परा अपने मूल रूप से संस्कृत की पांडित्य प्रदर्षन वाली साहित्य धारा का अगला विकास है। इसमें राजदरबार तो वही है लेकिन दरबारी श्रोताओं की रुचि परिवर्तन के कारण कवि लोग शास्त्रार्थ चर्चा न करके अपने आश्रयदाताओं की प्रषस्ति परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। **यह सर्वदा सत्य है कि**

प्रत्येक नई व्यवस्था का श्रीगणेष पुरानी व्यवस्था की कोख में ही होता है। इस चारण परम्परा की कोख में ही हिन्दी साहित्य की लोकजागरण वाली काव्यधारा का श्रीगणेष देखा जा सकता है। इस दृष्टि से डॉ॰ रामविलास शर्मा विद्यापति और अमीर खुसरो को विषेष महत्वपूर्ण मानते हैं।

;पद्ध मिथिला, विद्यापति और लोकजागरण

□□**विद्यापति का युग –** डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के आरम्भ में विद्यापति के युग को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार, "वह युग मध्यकाल नहीं व्यापारिक पूँजीवाद का अभ्युदय काल है। मिथिला उस वक्त '**सामाजिक–सांस्कृतिक**' दृष्टि से एक शक्तिषाली केन्द्र था तथा वह पूर्वी जनपदों की भाषाओं और साहित्य को प्रभावित कर रहा था।"[31] **"आर्थिक विकास** के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे थे, व्यक्तिगत सम्पत्ति का निर्माण हो रहा था, जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था के बंधन भी ढ़ीले हो रहे थे, इसके अलावा वह दर्षनषास्त्र का शक्तिषाली केन्द्र था।"[32] उस वक्त वहाँ "**राजनैतिक चेतना** का प्रसार भी देखा जा सकता है। **झारखंड और वहाँ के आदिवासी तुर्कों और मुगलों से लड़े तथा अपने राज्य भी स्थापित किये थे। यदि मिथिला और मगध के लोग उनका साथ देते तो राजनैतिक तस्वीर दूसरी होती।"**[33] निष्कर्ष यह है कि, "14–15वीं सदियों में मिथिला दर्षनषास्त्र और साहित्य के अध्ययन का बहुत बड़ा केन्द्र थी। वहाँ अन्य प्रदेषों और जनपदों के विद्वान विद्या सीखने के लिए एकत्र होते थे।. . . पन्द्रहवीं सदी में मैथिली गीति काव्य असम और उड़ीसा में वहाँ का अपना काव्य बन गया।. . . इस तरह **मिथिला से दो धाराएँ** फूटी जिन्होंने पड़ौसी देषों को प्रभावित किया, **एक दर्षन की धारा** और **दूसरी गीतिकाव्य** की धारा। दोनों का विद्यापति से गहरा सम्बन्ध था।"[34]

□□**साहित्यिक नवजारण –** मिथिला उस युग में सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से ही विकास नहीं कर रहा था बल्कि वह साहित्यिक नवजागरण का अग्रदूत भी बन रहा था। इस साहित्यिक नवजागरण के अग्रदूत थे **विद्यापति**। विद्यापति के साहित्य में अपने अतीत और परिवेष की मध्यकालीन प्रवृत्तियों के साथ–साथ नवजागरण की प्रवृत्तियाँ भी देखी जा सकती हैं। उनके सम्बन्ध में डॉ॰ रामविलास शर्मा लिखते हैं, "यह कहना अधिक उचित होगा कि उत्तर भारत में जो नवजागरण के साहित्य का प्रसार हुआ, उसके अग्रदूत विद्यापति हैं। वह सबसे पहले कवि हैं। धार्मिक आग्रह उनमें नहीं है। **नये साहित्य में विद्यापति यथार्थवाद के आदि प्रवर्तकों में** है।"[35] एंगेल्स ने दांते के लिए जो कहा था वही बात रामविलास शर्मा विद्यापति के बारे में कहते हैं कि, "वे मध्यकाल के अंतिम और आधुनिक काल के प्रथम कवि हैं।. .

. विद्यापति दांते से भी आगे हैं क्योंकि जितनी मध्यकालीनता दांते के साथ है, उसका शतांष भी विद्यापति के साथ नहीं है।"[36]

विद्यापति के युग में **संगीत** में भी बहुत उन्नति हुई थी। विद्यापति अपने पदो ंके साथ रागों के नाम भी देते थे। ये राग नाम विभिन्न क्षेत्रों का संकेत करते हैं जिससे इनका अखिल भारतीय स्वरूप सिद्ध होता है। डॉ॰ शर्मा कहते है कि, "मुख्य बात यह है कि राग का नाम एक ही हैं। और ब्रज, मिथिला और कर्णाटक–इतने दूर–दूर प्रदेषों में सामान्य है।"[37]

विद्यापति रचित **'षैव सर्वस्व सार'** की अनेक बातें आगे चलकर **'वैष्णव आन्दोलन'** में समेट ली गई हैं। इनसे एक ओर भक्ति आन्दोलन की पौराणिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होता है, दूसरी ओर यह संकेत मिलता है कि षिवभक्ति का ही वैष्णवीकरण हुआ है। शूद्रों, स्त्रियों और म्लेच्छों के लिए जो कुछ कहा गया है, उससे पुराणों की सामंत विरोधी, पुरोहित विरोधी, **प्रगतिषील चेतना** का अनुमान होता है।"[38] विद्यापति में **प्रषस्ति काव्य परम्परा** उपस्थित है लेकिन, "उन्होंने अमिञकर की प्रषस्ति में जो पद्य कहा, उसकी एक विषेषता यह है कि उसमें मंत्री को स्पष्ट रूप से कायस्थ कहा गया है। राजा ब्राह्मण, मंत्री कायस्थ, उसके प्रषस्ति गायक विद्यापति मानना चाहिए कि चारण काव्य परम्परा **वर्णव्यवस्था के बन्धन** षिथिल कर रही थी।"[39] कीर्तिलता में तुर्कों के सटीक वर्णन से यह सिद्ध होता है कि, "अन्य अपभ्रंष रचनाओं की तुलना में यहाँ पुरानी काव्य रूढ़ियों के बीच से यथार्थवादी धारा फूटती दिखाई देती है।"[40] डॉ॰ शर्मा इस ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं कि, "विद्यापति ने संस्कृत ग्रंथों के आधार पर **व्यक्तिगत सम्पत्ति और उत्तराधिकार** जैसे विषयों की भी चर्चा की है। नवजागरण काल में यह कार्य आवष्यक था।"[41]

मिथिला के ही एक अन्य दरबारी कवि **'ज्योतिरीष्वर ठाकुर'** का उल्लेख करते हुए डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "ज्योतिरीष्वर ने वर्ण रत्नाकर में लोरिक नाम के लोकगीत का उल्लेख किया है जो मिथिला में आज भी लोकप्रिय है। इससे ज्ञात होता है कि नवजागरण के तत्व विद्यापति से पहले से चले आ रहे थे। 14वीं सदी में मैथिली गद्य की रचना नवजागरण का चिह्न है। मिथिला की यह स्थिति यूरोप की उस स्थिति के समान है जब मिल्टन और बेकन लैटिन के साथ–साथ अंग्रेजी में भी लिख रहे थे।"[42]

;पपद्ध अमीर खुसरो और लोकजागरण

डॉ॰ रामविलास शर्मा वीरगाथा काव्य या चारण काव्य के दो कवियों–विद्यापति और अमीर खुसरो को लोकजागरण के अग्रदूत मानते हैं। बाद में जिस काव्य धारा का विकास **'भक्तिकाल'** में होता है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि वे लोकजागरण की अवधारणा को सीमित अर्थ में नहीं लेते। उनका मानना है कि, **"लोकजागरण के अध्ययन को केवल साहित्य तक सीमित नहीं करना चाहते हैं। वे साहित्य के साथ–साथ अन्य कलाओं–नृत्य, संगीत, चित्र, स्थापत्य, षिल्प आदि को तो अत्यंत आवष्यक मानते ही हैं तथा दर्षन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी को भी इसकी परिधि में लेना चाहते हैं।"**[43] अमीर खुसरो का परिचय देते हुए वे लिखते हैं कि, "संगीत और साहित्य दोनों में एक महत्वपूर्ण नाम अमीर खुसरो का है। वह विदेषों से आये हुए मुसलमान नहीं थे, वह भारत में जन्मे थे और उनकी मातृभाषा हिन्दी थी। खुसरो का जन्म ब्रज (एटा जिले में पटियाली गाँव) में हुआ था। अपने दरबारी जीवन की शुरूआत अवध से की थी। बाद में सुल्तान कैकुबाद के यहाँ दिल्ली पहुँचे। . . .हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज, अवध और कुरू इन तीनों जनपदों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। . . .खुसरो इन तीनों की संस्कृति से परिचित थे। दरबार में रहते हुए भी वह दरबारी से ज्यादा सूफी थे और अनेक सूफियों की तरह लोक संस्कृति से उनका भी गहरा लगाव था।"[44]

भारत की रोटी खाकर परदेष की तारीफ करने वालों को खरी खोटी सुनाने, भारतीय संगीत की श्रेष्ठता को स्वीकारने, **गरीब किसानों के प्रति सहानुभूति** रखने तथा **इतिहास लेखन में यथार्थवादी** धारा का विकास करने के लिए अमीर खुसरो को भी नवजागरण का श्रेष्ठ कवि मानते हैं। डॉ॰ शर्मा लिखते हैं कि, "खुसरो ने जो कुछ इतिहास के बारे में लिखा है, वह अच्छे इतिहासकारों की रचनाओं से टक्कर ले सकता है।"[45]

;पपपद्ध राज दरबारों की भूमिका और लोकजागरण

लोकजागरण का प्रारम्भिक साहित्य मूलतः दरबारी साहित्य है। तत्कालीन राजदरबार सामंती संस्कृति और साहित्य के पोषक तथा लोक संस्कृति के विरोधी थे। लोकजागरण की धारा सामंतवाद को परास्त कर ही आगे बढ़ सकी थी। फिर भी डॉ॰ रामविलास शर्मा दरबारों की भूमिका को एकांगी दृष्टिकोण से देखने के पक्षधर नहीं है। क्योंकि उनकी मान्यता है कि, "सभ्यता का हर स्तर वर्गबद्ध नहीं होता। इस तरह साहित्य का हर स्तर सम्पत्तिषाली वर्णों के हितों से बंधा हुआ नहीं रहता।"[46] इस आधार पर **सम्पूर्ण सामंती संस्कृति लोकजागरण की विरोधी नहीं थी।** राजदरबारों की लोकजागरण में सकारात्मक भूमिका भी देखी जा सकती है। विद्यापति के आधार पर डॉ॰ शर्मा कहते हैं कि, "आश्रयदाताओं

की अतिषयोक्ति पूर्ण प्रषंसा के बावजूद उनके संरक्षण में विद्यापति ने बहुत अच्छा काम किया। वे हिन्दी प्रदेष में नवजागरण के अग्रदूत हैं। इसका श्रेय राजदरबारों को भी देना चाहिए। यह स्थिति हिन्दी प्रदेषों में ही नहीं, भारत के अन्य प्रदेषों में भी थी।"[47] वास्तविकता तो यह है कि उस युग के लगभग सम्पूर्ण साहित्य का विकास ही राजदरबारों में हुआ थ। वे लिखते हैं कि, "चारण काव्य परम्परा, रीतिवादी धारा, पुरातन महाकाव्यों का रूपान्तर, भक्ति साहित्य की रचना, साहित्य में लोकभाषा की प्रतिष्ठा, ये सारी प्रवृत्तियाँ और धाराएँ राजदरबारों से जुड़ी हुई हैं किन्तु सभी प्रतिभाषाली कवियों को न तो राजाश्रय मिला और न ही वे उसे पाना चाहते थे।"[48] दरअसल उनकी प्रगतिषील भूमिका का सम्बन्ध राजनैतिक स्थिरता से था। "अंग्रेजी राज से पहले जहाँ के सामंत आपस में लड़ते रहते थे वहाँ वे भाषा और साहित्य के विकास में बाधक थे लेकिन जहाँ वे 100–150 साल तक शान्ति व्यवस्था बनाए रख सके वहाँ उन्होंने व्यापारिक सम्बन्धों का विकास करने के साथ–साथ **साहित्यकार व कलाकारों को आश्रय देकर प्रगतिषील भूमिका** का निर्वहन किया था। तेलगू, बांग्ला और हिन्दी प्रदेष में अनेक जगह राजदरबारों की प्रगतिषील भूमिका देखी जा सकती है।"[49] डॉ॰ शर्मा चारण काव्य परम्परा को **मध्यकालीनता और आधुनिकता का संगम मानते हैं।** इस दृष्टि से सामंतो के योगदान को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि, "सामंतवाद के कारण भारत में हजारों वर्ष तक चारण काव्य परम्परा अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित रही है। लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा, **वीर अथवा श्रृंगार रस की अनिर्वायता**, आश्रयदाताओं की **अतिषयोक्ति पूर्ण प्रषंसा** उसकी प्रमुख विषेषताएँ हैं। इसकी अनेक धाराओं में से एक धारा **यथार्थवाद की धारा** अत्यन्त मूल्यवान है। यदि हम **प्रषस्ति–परम्परा** को मध्यकालीन मानें और **यथार्थवाद** को आधुनिक, तो कह सकते हैं, कि मध्यकालीनता को भीतर से आधुनिकता की धारा फूट रही थी।"[50]

चारण काव्य परम्परा के सम्बन्ध में हम निष्कर्षतः कह सकते है कि संस्कृत की पांडित्य प्रदर्षन पूर्ण काव्यषास्त्रीय दरबारी परम्परा के क्षीण होने पर उन्हीं राजदरबारों में लोकभाषाओं के माध्यम से चारण काव्य परम्परा का विकास होता है। इस चारण काव्य धारा में श्रृंगार रसाश्रित संस्कृत की **'रीतिवादी काव्य परम्परा'** के साथ–साथ वीर रसाश्रित आश्रयदाताओं की **'प्रषस्ति काव्य परम्परा'** एक नवीन प्रवृत्ति के रूप में उभरती है। यह प्रवृत्ति हिन्दी ही नहीं अपनी–अपनी परिस्थितियों के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर देखी जा सकती है। इसी युग में रीतिवादी और वीरगाथा काव्य से भिन्न भक्ति और लोकजागरण का उद्‌भव भी एक महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना है। इस तरह आधुनिक काल के इस प्रथम चरण के प्रारम्भ में हम **रीतिवादी काव्यधारा, वीरगाथात्मक काव्यधारा** तथा **लोकजागरण काव्यधारा** की उपस्थिति देख

सकते हैं। इनका चरम विकास हमें भक्तिकाल और रीतिकाल के रूप में देखने को मिलता है। यह चारण काव्य परम्परा का समय हिन्दी साहित्य के इतिहास में विद्वान आदिकाल के नाम से पहचानते आए हैं। प्रथम दृष्टया इसकी अधिकांष प्रवृत्तियाँ मध्यकालीन प्रवृत्तियाँ ही लगती हैं। लेकिन डॉ॰ रामविलास शर्मा इस युग में अनेक आधुनिक प्रवृत्तियों का उद्‌भव सिद्ध करते है और इन आधुनिक प्रवृत्तियों को अभ्युदयषील प्रवृत्ति मानकर इस युग को आधुनिक काल के अन्तर्गत ही मान लेते हैं। डॉ॰ शर्मा का निष्कर्ष है कि, "आधुनिक भारत की व्याख्या इन भाषाओं और उनमें रचे हुए साहित्य के बिना नहीं की जा सकती। वे एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। लेकिन इस कड़ी में मध्यकालीनता का तत्व कितना है और आधुनिक भारत का तत्व कितना है? जो विकास दिखाई देता है, वह अभूतपूर्व है, वैसा विकास पहले न हुआ था। इसलिए कहना चाहिए कि यह आधुनिक युग की शुरुआत है। मध्यकालीनता एक हद तक बनी हुई है, सामंती अवषेष विद्यमान हैं लेकिन उनके बीच से आधुनिक युग फूट रहा है और उससे वर्तमान भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध है।"[51] वास्तविक स्थिति तो यह है कि इस युग में सामंती प्रवृत्तियों का प्राबल्य है जिसे डॉ॰ शर्मा स्वयं भी स्वीकार करते हैं। लोकजागरण की शुरूआती अवस्था के चिह्न भी इस युग में हमें उपलब्ध होते हैं जिनका विकास बाद की घटना है। इस प्रकार चारण काव्य परम्परा को राष्ट्रीयता और जातीयता के विकास की दृष्टि से डॉ॰ शर्मा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे यहाँ से यथार्थवाद का विकास भी मानते हैं जो मार्क्सवाद का आधार रहा है। वे साहित्य के साथ अन्य कलाओं का अध्ययन आवष्यक मानते हैं।

संदर्भ सूची

1 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 172

2 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 13&14

3 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 55&62

4 ¼1½ jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 14&15

¼2½ jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 81&98

5 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 15

6 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 10

7 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 139

8 jkefoykl 'kekZ & yksd tkxj.k vkSj fgUnh lkfgR;] i`ñ 11&12

9 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 139

10 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 139

11 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 141

12 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 140

13 jkefoykl 'kekZ & fgUnh tkfr dk lkfgR;] i`ñ 140

14 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 56

15 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 24&28

16 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 51

17 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 93

18 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 95

19 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 24

20 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 95

21 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 67

22 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 56

23 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 62&63

24 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 65

25 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 59&61

26 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 58

27 jkefoykl 'kekZ & fgUnh vkykspuk&vkpk;Z jkepUæ 'kqDy] i`ñ 177

28 jkefoykl 'kekZ & fgUnh vkykspuk&vkpk;Z jkepUæ 'kqDy] i`ñ 61

29 jkefoykl 'kekZ & fgUnh vkykspuk&vkpk;Z jkepUæ 'kqDy] i`ñ 72&75

30 jkefoykl 'kekZ & fgUnh vkykspuk&vkpk;Z jkepUæ 'kqDy] i`ñ 77

31 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 7

32 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 157

33 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 161&162

34 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 81

35 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 151

36 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 151&153

37 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfedk] i`ñ 158

38 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 82

39 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 80

40 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 88

41 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 85

42 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfed] i`ñ 160

43 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfed] i`ñ 163

44 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; lkfgR; dh Hkwfed] i`ñ 164

45 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 35

46 jkefoykl 'kekZ & ijEijk dk ewY;kdau] i`ñ 11

47 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 91

48 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 99

49 jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 97&98

[50] jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 81

[51] jkefoykl 'kekZ & Hkkjrh; laLÑfr vkSj fgUnh çns'k] Hkkx&2] i`ñ 101&102